इकाई 3 बौद्ध तथा जैन परम्पराएँ*

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 जैन *पौमचरियम*

3.3 अतीत-संबंधी बौद्ध अवधारणा

3.4 बौद्ध ग्रंथ

3.5 ग्रंथ लेखक

3.6 बौद्ध ऐतिहासिक परम्परा

- 3.6.1 *संघ* का आरम्भिक इतिहास
- 3.6.2 समय की अवधारणा
- 3.6.3 ऐतिहासिक विचार के चिह्न
- 3.6.4 श्रीलंका के पाली इतिवृत्त
- 3.6.5 बौद्ध जीवनियाँ

3.7 अन्य धारणाएँ

3.8 सारांश

3.9 शब्दावली

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.11 संदर्भ ग्रंथ

3.12 शैक्षणिक वीडियो

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इनके विषय में सीख पाएँगे:

- पौराणिक साहित्य से भिन्न अतीत की निर्मिति,
- *रामायण* का जैन प्राकृत संस्करण *पौमचरियम* जो दर्शाता है कि कैसे अतीत-संबंधी जैन निर्मिति को इस ग्रंथ के माध्यम से समझा जा सकता है,
- बौद्ध ग्रंथ जो ऐतिहासिक चेतना का प्रदर्शन करते हैं, और
- बौद्ध धर्म की अतीत की निर्मिति में *संघ* की केंद्रीय भूमिका।

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम अतीत की पौराणिक निर्मिति के विषय में अध्ययन कर चुके हैं। अन्य ऐसी परम्पराएँ हैं जो पूरी तरह से अतीत की पौराणिक निर्मितियों से भिन्न हैं, जैसे बौद्ध तथा जैन परम्पराएँ। उदाहरण के लिए, बौद्ध तथा जैन परम्पराएँ एक स्वीकृत कालक्रम तथा 'ऐतिहासिक विवरण के एक सुपरिभाषित विचारधारात्मक उद्देश्य' के प्रति सुस्पष्ट सरोकार व्यक्त करती हैं। इस प्रकार वे पौराणिक परम्पराओं का एक विकल्प पेश करती हैं। जैन विवरण पहली सहस्राब्दी सामान्य युग से संबंध रखते हैं। शैली समान होने पर भी वे घटनाओं तथा व्यक्तित्वों को अलग ढंग से प्रस्तुत करते हैं। हम जैन

* **डॉ. शुचि दयाल, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली**

ऐतिहासिक परम्परा को समझने के लिए विमलसूरि के ग्रंथ *पौमचरियम* की चर्चा करेंगे। इसके पश्चात् हम विस्तार से बौद्ध परम्परा पर चर्चा करने की ओर अग्रसर होंगे।

3.2 जैन *पौमचरियम*

जैन ग्रंथ *पौमचरियम* प्राकृत में लिखा गया है। यह *रामायण* की कथा का एक भिन्न संस्करण है। इस ग्रंथ के लेखक विमलसूरि ने इसकी तिथि महावीर के 530 वर्ष बाद बतायी है। वहीं कुछ अन्य विद्वान इसकी तिथि सामान्य युग की प्रारंभिक शताब्दियों के कुछ बाद तय करते हैं। अन्य सबसे पुराने संस्करणों में से एक *पौमचरियम* का उपयोग जैन सदाचार की शिक्षा के लिए किया जाता था। यह राम की कथा का वर्णन करते हुए महाकाव्य-विपरीत स्वरूप ग्रहण करता है। यह कथा, जैसा कि विमलसूरि का दावा है, वही है जो महावीर ने इंद्रभूति को सुनायी थी, जिसे बाद में इंद्रभूति द्वारा अपने शिष्यों को सुनाया गया था। यह तथ्य कि इसका प्रथम पाठ किसी देवता या दिव्यपुरुष द्वारा किया गया था इस ग्रंथ के महत्व पर बल देने के लिए है। इस कथा को *राघवचरित* भी कहा गया है और यदा-कदा *पुराणम् आख्यानम्* भी कहा गया है। इस प्रकार यह ब्राह्मणीय शैली के समान ही है। लेकिन, कथानक तथा इसका मंतव्य भिन्न है।

विमलसूरि उस समय प्रचलन में रही कथाओं का यह कहकर खंडन करता है कि वे हास्यास्पद कहानियाँ और मिथ्यावचनों के अलावा कुछ भी नहीं हैं। वे तर्क तथा विश्वास के विपरीत हैं। अतः उसने कथा के इस संस्करण की रचना की जिसका उद्देश्य जो हुआ था उसका वास्तविक वर्णन करना है। उसने पुराने लेखन-कार्य का स्रोतों के रूप में प्रयोग किया है। लेकिन, वह उन संस्करणों पर प्रश्न चिह्न लगाता है और उनसे विपरीत मत प्रकट करता है जिनका उसने स्रोत-सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया है।

पौमचरियम प्राकृत में लिखा गया है न कि संस्कृत में। अतः इसकी पहुँच अधिक व्यापक थी। यह जैन परम्परा की शुरुआती पृष्ठभूमि को समाहित किए हुए है, जैसे पदार्थ-संबंधी ज्ञान, सृष्टि की उत्पत्ति से संबंधित कथाएँ व मिथक। *पुराणों* के समान ही यहाँ भी हम ब्रह्मांड के इतिहास, काल-चक्र तथा *तीर्थंकरों* की जीवनियाँ पाते हैं। इसके बाद मुख्य कुलों तथा उनकी वंशावलियों का विवरण आता है। रोमिला थापर का मानना है कि यही इसे महाकाव्यों तथा पौराणिक शैलियों के अंतर्क्षेत्र में स्थापित करता है।

राम की यह कथा मगध के क्षेत्र में शुरू होती है जिसकी राजधानी राजगृह है। उस समय का शासक श्रेणिक या बिंबिसार है। चूँकि बिंबिसार बुद्ध का समकालीन था और पौराणिक वंश-सूची में शामिल है यह उसकी ऐतिहासिकता की ओर संकेत करता है। राम कथा के उपलब्ध संस्करणों पर संदेह करते हुए बिंबिसार महावीर के एक शिष्य से इसके सही स्वरूप का वर्णन करने का आग्रह करता है। इस परिचर्चा से कुछ रुचिकर बिंदु उभर कर सामने आते हैं। पहला यह दिखाने का प्रयास है कि यद्यपि इस कथा का कुछ ऐतिहासिक आधार रहा है, मौजूदा संस्करणों में इसको जानबूझकर मिथ्यापूर्ण बनाया गया है। इसे इस तथ्य से भी बल मिलता है कि राजा श्रेणिक उस पर संदेह व्यक्त करता है जिस तरह से राक्षसों, विशेषकर रावण, का चित्रण किया गया है। साथ ही, वह इस कथा के अन्य पहलुओं पर भी प्रश्न खड़ा करता है। रोमिला थापर का यह विश्वास है कि यहाँ ऐतिहासिकता का विचार स्पष्टतः उद्घाटित और केंद्रीय है न कि अंतर्बद्ध। अतीत के प्रति इस तरह की अभिवृत्ति ***श्रमण*** मत-संप्रदायों में सामान्य तत्व थी।

यद्यपि *पौमचरियम* '*राक्षसों*' के प्रति अपने विवेचन में सहानुभूतिपूर्ण है इसे 'अन्य पक्ष' अर्थात '*राक्षसों*' के नज़रिए के रूप में नहीं देखा जा सकता है। तथापि यह वाल्मीकि *रामायण* में वर्णित '*राक्षसों* ' का एक सहानुभूति-परक वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। यह ग्रंथ स्पष्ट करता है कि राक्षस कोई 'दुष्ट' मानव नहीं हैं बल्कि 'रक्षक' हैं, जो इस शब्द के धातु रूप 'रक्ष' यानी रक्षा करने से भी स्पष्ट होता है। इस कथा के उपलब्ध तत्कालीन संस्करणों को नए सिरे से लिखने के प्रयास में रावण को न तो दस सिरों वाले के रूप में दिखाने और न ही मांस भक्षण करने वाले के रूप में चित्रित करने का सचेत प्रयास नज़र आता है। '*राक्षसों* ' को इस तरह दर्शाया गया है जैसे वे 'राक्षत्व' के रंग में रंगे जाने से पूर्व वास्तव में थे। *पौमचरियम* ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक होने का दावा करता है।

इसका विवरण *विद्याधरों* के देश के वर्णन से शुरू होता है। वे शब्दशः विद्या को धारण करने वाले थे। *'राक्षस'* और *'वानर'* दोनों ही *विद्याधरों* की श्रेणी में आते थे। आरंभिक अध्याय इन दोनों समूहों

की वंशावलियों की चर्चा करते हैं। इस ग्रंथ का ध्यान विंध्य क्षेत्र तथा आगे की ओर गोदावरी नदी के क्षेत्र पर केंद्रित है। सभी चरित्र समर्पित जैन हैं। वे हिंसा से दूर रहते हैं तथापि नायक, राजा और राजकुमार युद्ध में अपनी वीरता का प्रदर्शन करते हैं। वंशावली वाले खंड में चार विभिन्न समूहों की चर्चा की गई है: *इक्खग/इक्ष्वाकु, सोमवंश, विज्जहरन/विद्याधर* तथा *हरिवंश*। इन चारों में *विद्याधर* सबसे महत्वपूर्ण हैं। *विद्याधरों* में एक महत्वपूर्ण चरित्र मेघवाहन है। कुछ कठिनाइयों के कारण वह लंका की ओर प्रस्थान कर जाता है तथा वहाँ '*राक्षस*' वंश की स्थापना करता है। *विद्याधरों* का एक अन्य समूह '*वानर*'-वंश है जिसकी स्थापना एक *विद्याधर* राजकुमार ने की जो '*वानर*' द्वीप में निर्वासन में रह रहा था। उसने किष्किंधा में एक राज्य की स्थापना की। चूँकि उनकी पताका का चिह्न '*वानर*' था इसलिए उन्हें '*वानर*'-वंश कहते थे। *विद्याधरों* के ये दोनों समूह न केवल समय-समय पर लड़ते रहते थे बल्कि वैवाहिक और राजनीतिक संबंधों को साझा भी करते थे। दशरथ का संबंध *आदित्यवंश* या इक्ष्वाकु वंश से था। यह कथा रावण को एक *अर्द्ध-चक्रवर्तिन* अर्थात लगभग एक सार्वभौमिक शासक के रूप में दर्शाती है। यह बताया गया है कि उसने *भारतवर्ष* के बड़े हिस्से पर विजय प्राप्त की थी। उसे एक पवित्र जैन तथा जैन *विहारों* के संरक्षक के रूप में दर्शाया गया है। राम के साथ उसका संबंध अंतर्निहित रूप से प्रतिरोध का है जो जैन मत के अनुरूप ही है। राम आठवें वासुदेव हैं तथा 'रावण' आठवाँ प्रति-वासुदेव है। न केवल रावण एक मुख वाला है बल्कि वह उड़ भी सकता है। वाल्मीकि के *रामायण* की तुलना में रावण का सीता के साथ संबंध अधिक संवेदनशील प्रकृति का है और न कि 'आतंक' उत्पन्न करने वाले स्वरूप का। दशरथ जैन शिक्षाओं से प्रभावित होकर संसार का त्याग कर देते हैं, उनकी पत्नी कैकेयी यह वर माँगती हैं कि उनके पुत्र को सिंहासन पर बैठाया जाए। वाल्मीकि के रामायण की तुलना में कैकेयी केवल अपने पुत्र के लिए सिंहासन चाहती हैं, वह राम के वनगमन के लिए बल नहीं डालतीं। वनवास के दौरान राम अपना अधिकांश समय दरबारों में व्यतीत करते हैं न कि तपस्वियों की तरह जीवन बिता कर। राजत्व के आदर्श नियम इक्ष्वाकुओं तथा '*राक्षसों*' दोनों के लिए एक ही प्रकार के नज़र आते हैं। *पौमचरियम* ब्राह्मणों का वर्णन, अनुशासनहीनों, अपने यज्ञ में पशुओं का वध करने वालों तथा मिथ्यावाद का प्रचार करने वालों के रूप में करता है। स्पष्ट है, यह काव्य ब्राह्मणों या *वर्णाश्रम* धर्म की प्रतिष्ठा ऊँचा उठाने की कोशिश नहीं करता है। अंत में दशरथ और राम, दोनों, संसार का त्याग कर देते हैं और सीता एक भिक्षुणी बन जाती हैं। इस प्रकार जैन आचारशास्त्र को क्षत्रिय नैतिकता के ऊपर विजयी होते हुए दिखाया गया है।

यह महाकाव्य उन मुखियाओं पर केंद्रित है जो क्षेत्र, प्रतिष्ठा तथा अधिकारों के लिए एक-दूसरे के साथ संघर्षरत हैं। यह कथा प्रमुख ऐतिहासिक परिवर्तनों के काल में, जैसे राज्य के रूप में राज्य-व्यवस्था के नए स्वरूप का उदय या जब राज्यों को ऐसी विचारधारा की आवश्यकता थी जो राजा में दैवीय तत्वों का निरूपण कर सकें, उस समय फिर से सूत्रबद्ध की जा रही थी। इस तरह का सूत्रीकरण अतीत से मान्यता की आकांक्षा रखता था और इस हेतु इस कथा को एक नया रूप प्रदान किया गया था। विभिन्न कुलों के बीच संघर्ष का उल्लेख *जातकों* तथा *महाभारत* और बाद में *पुराणों* में मिलता है। इस तरह के संदर्भ ऐतिहासिकता का निचोड़ स्वयं में समाहित रखते हैं।

ऐसे वंश जो यदुओं से उत्पन्न हुए थे अयोध्या पर आक्रमण से संबंधित थे। रावण का संबंध मेघवाहन से था जो एक चेदि रहा होगा। चेदि यदुवंश से संबंध रखते थे तथा बौद्ध स्रोतों में उन्हें प्रतिष्ठित स्थान दिया गया है। पौराणिक दंतकथाओं के अनुसार हैहयों का संबंध चेदियों से था और इस तरह चेदियों का संबंध मेघवाहन से था जिन्होंने अयोध्या पर आक्रमण किया था और जो अंततः पराजित हुए थे। *पौमचरियम* राम की ऐतिहासिकता से उतना सरोकार नहीं रखता है। यह अधिक महत्वपूर्ण घटनाओं, यानी विभिन्न वंशों के बीच संघर्ष जिनमें इक्ष्वाकु के वंशज यदुओं द्वारा अपने क्षेत्र पर किए गए आक्रमण का बदला ले रहे थे, का प्रतिनिधित्व करता है। चेदियों को नकारात्मक दर्शाया गया है किंतु वे एक सुपरिचित मानव समूह हैं जिनका एक सुनिश्चित भौगोलिक क्षेत्र पर अधिकार है और जो राजत्व की संस्था द्वारा शासित हैं। उन्हें मात्र कुछ अन्य 'भयंकर काल्पनिक जीवों' की तरह नहीं दर्शाया गया है जैसा कि *रामायण* में था या *जातक* कथाओं के पिशाचों अथवा चमत्कारी प्रेतों की तरह नहीं दिखाया गया है। *पौमचरियम* उन्हें समान भाव से चित्रित करता है और उनके वर्णन में इस भिन्नता ने इस कथानक में एक बदलाव की माँग को जन्म दिया होगा और इस तरह इस कथा का पुनर्लेखन हुआ होगा। इसका पुनर्लेखन उस समय में हुआ जब *गण-संघों* का रूपांतरण राजतंत्रों में हो रहा था।

पौमचरियम रामायण के ज्ञात संस्करणों की तीखी आलोचना करता है और एक अलग ही संस्करण प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। स्पष्ट रूप से इस तरह का व्यवहार करने के लिए एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी। संभवतः *पौमचरियम विद्याधरों* के वंश को वैध ठहराने की कोशिश कर रहा था। इसके अतिरिक्त वे राजसत्ताएँ जो सामान्य युग के शुरुआती समय में उभर रही थीं उन्हें भी वैधता की आवश्यकता थी। इनमें से बहुत से राज्य, जैसे पश्चिमी भारत में त्रैकूटक; बुंदेलखंड तथा त्रिपुरी में बोधि; विदर्भ में भोज तथा वाकाटक; दक्षिण कोसल तथा कलिंग में चेदि थे। चेदियों से संबंध इन सबके बीच आम था। सामान्य युग के प्रारंभिक काल में जैन धर्म इस क्षेत्र में प्रबल था। जैन राजकीय संरक्षण के आकांक्षी थे। बहुत से राजवंश अधिक स्थापित क्षत्रिय वंश के साथ वंशावली-गत संबंध स्थापित करने की कोशिश कर रहे थे। वे राजवंश जो हैहयों से उत्पत्ति का दावा कर रहे थे इस परम्परा के भार्गव संस्करण (वाल्मीकि *रामायण*) के विरोधी रहे होंगे। जैन संस्करण का स्वागत उनके द्वारा किया गया जो चेदि तथा मेघवाहन वंशों से संबंध का दावा कर रहे थे।

मगध, कलिंग, मथुरा, विदिशा तथा बुंदेलखंड के क्षेत्र और रीवा-क्षेत्र का गहरा जैन संबंध रहा है तथा इस प्रकार *पौमचरियम* का जैन संदर्भ उत्तर भारत में सुपरिचित था।

जैन संस्करण इस तथ्य के कारण ऐतिहासिकता का दावा करता है कि वह इस ग्रंथ को बिंबिसार के साथ जोड़ता है जो एक ऐतिहासिक राजा था। इसके अतिरिक्त *पौमचरियम* इस कथा के अन्य संस्करणों को मिथ्यावादी कहकर नकार देता है क्योंकि यह एकमात्र प्रामाणिक ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करने का दावा करता है '... जिन तत्वों के समर्थन का इससे संकेत मिलता है वे अतीत-संबंधी एक विशेष दृष्टिकोण के विचार से महत्वपूर्ण हैं। इस कथा के लिए ऐतिहासिकता का दावा अतीत के प्रति एक नई चिंता को प्रकट करता है' (थापर 2017: 262)।

3.3 अतीत-संबंधी बौद्ध अवधारणा

प्रायः बौद्ध दस्तावेज़ ऐतिहासिक रुप से विश्वसनीय हैं। अपने सबसे शुरुआती विवरणों में अतीत की बौद्ध निर्मितियों में *इतिहास-पुराण* परम्परा के तत्व दिखायी पड़ते हैं। तदनंतर, बौद्ध धर्म तथा इसके घटकों के इतिहास लेखन में एक नज़र में आने वाला परिवर्तन है कि बौद्ध परम्परा में जिन व्यक्तियों और घटनाओं को प्रमुख स्थान दिया गया है वे *पुराणों* से भिन्न हैं क्योंकि राजसत्ता की प्रकृति, प्रतिपाद्य सामाजिक नैतिकता की प्रकृति और बौद्ध विचारधारा तथा राजनीतिक-सामाजिक संस्थाओं के बीच संबंध की परिकल्पना बिल्कुल भिन्न थी। वे ग्रंथ जिनसे बौद्ध ऐतिहासिक परम्परा का निर्माण होता है इस प्रकार हैं:

1) पाली भाषा में लिखित *त्रिपिटक*
2) श्रीलंका के इतिवृत्त तथा बाद में लिखे गए उनके भाष्य
3) बुद्ध की जीवनियाँ
4) सामान्य युग की दूसरी शताब्दी में तिथिबद्ध किए गए तिब्बत तथा लद्दाख से प्राप्त इतिवृत्त

यह ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य बौद्ध धार्मिक सरोकारों से उपजा था, यद्यपि इसका राजसत्ता से संबंध व समाज पर चिंतन अधिक महत्वपूर्ण कारक थे। इतिहास के साथ अंतरापृष्ठ (interface) का संकेत न केवल इसमें मिलता है कि कौन से तथ्य को उद्धृत किया गया है, बल्कि कैसे वैधता का दावा किया जाता है भी इसमें प्रकट होता है। मत-सम्प्रदाय की सत्ता को बल प्रदान करने के लिए तथ्यपरक जानकारी को शामिल किया गया है। यह कई पंथीय इतिवृत्तों की विशेषता बन गया। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का संकेत विभिन्न प्रकार से मिलता है:

1) बुद्ध की जीवन लीला का वर्णन करने में जिसे तथ्यात्मक माना जाता था।
2) इसमें कि *संघ* कैसे अस्तित्व में आया।
3) मूल संगठन से उदित होने वाले विभिन्न मत-सम्प्रदायों को सूचीबद्ध करने में।
4) *संघ* तथा शासक के बीच के संबंध का वर्णन करने में।

लेकिन पहले स्वयं को बौद्ध *त्रिपिटकों* से परिचित कराना आवश्यक है ।

3.4 बौद्ध ग्रंथ

बौद्ध ग्रंथों की रचना विद्वान भिक्षुओं द्वारा की गई थी। ये ग्रंथ बुद्ध की शिक्षा तथा *संघ* के इतिहास के विषय में थे। ये ग्रंथ भिक्षुओं तथा सामान्य उपासकों, दोनों, के लिए लिखे गए थे। उनकी प्रतिलिपियाँ बनायी जाती थीं तथा उन्हें *मठ-विहारों* में दिशा-निर्देशन के लिए उपयोग में लाया जाता था।

इस तथ्य को जानना महत्वपूर्ण है कि बौद्ध धर्म का संस्थापक एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व था। प्रारम्भ में उनकी शिक्षाएँ बिखरी हुई थीं तथा जो भी अनुयायियों को याद था उसके माध्यम से उन्हें जाना जाता था। जब अनुयायियों की संख्या का अनुपात बहुत बढ़ गया तो इन्हें *पिटकों* के रूप में संगठित करने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। जो अनुयायी बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति अत्यधिक समर्पित थे उनको एक व्यवस्था – *संघ* – में संस्थाबद्ध किया गया। चूँकि यह एक नए तरह का विकासक्रम था जो किसी अन्य संन्यास जीवन अपनाने वाले मत-सम्प्रदाय में आम नहीं था अतः इसे लेखबद्ध किया जाना था। इसका तात्पर्य था साक्ष्य के रूप में बुद्ध के जीवन के संबंध में कोई सूचना देने के साथ ऐतिहासिक बुद्ध के सत्य-अस्तित्व और वैधता के संबंध में विवरण देना। भिक्षु समय-समय पर बुद्ध की शिक्षाओं पर चर्चा तथा वाद-विवाद करने के लिए एकत्र होते थे। इसका परिणाम मत-सम्प्रदायों में विभाजन में निकला। जिसकी परिणति प्रत्येक समूह द्वारा अपने दृष्टिकोण से इतिहास को दर्ज करने में हुई।

राजनीतिक परिदृश्य में प्रथम सहस्राब्दी बी सी ई के मध्य में जब बौद्ध धर्म का उदय प्रधान मत के रूप में हुआ तो उत्तरी भारत में कई *गण-संघ* (कुलीनतंत्र) तथा राज्य (राजतंत्र) अस्तित्व में थे। बौद्ध ग्रंथों में प्रथम सहस्राब्दी बी सी ई के उत्तरार्द्ध से सामान्य युग की प्रारम्भिक सदियों तक मध्य गंगा के मैदानों में मगध तथा कोसल में शासन करने वाले राजाओं तथा *गण-संघों* का उल्लेख मिलता है। इनका बुद्ध के साथ किसी न किसी प्रकार का संबंध रहा था। मगध में शासन करने वाले राजा बिंबिसार तथा उसके पुत्र अजातशत्रु और कोसल के प्रसेनजित बुद्ध के समकालीन थे। महावीर सुविख्यात ज्ञांत्रिक (Jnatrika) कुल से संबंध रखते थे जो वैशाली के वृज्जि संघठन में शामिल आठ कुलों में से एक था। क्रमिक रूप से ये कुलीनतंत्र राजतंत्रों में रूपांतरित होते रहे। बौद्ध परम्परा के अनुसार राजाओं में मगध का शासक अशोक एक महान् धर्म-संरक्षक राजा था।

बौद्ध धर्म का विकास नगरीय परिवेश में हुआ था। नगरों की परिधि में स्थित उद्यानों में नए विचारों पर चर्चा की जाती थी। ***उपनिषदों*** से हमें यह पता चलता है कि राजाओं के दरबारों में नए विचार चर्चा तथा शास्त्रार्थ का विषय थे। नगरों में वैदिक ग्रंथों का पाठ नहीं किया जाता था, कदाचित् उनकी निंदा ही की जाती थी। संरक्षण पाने और अनुयायी बनाने हेतु इन नए विधर्मी मत-सम्प्रदायों के बीच काफ़ी प्रतिस्पर्धा थी। अतः यह अनुभव किया गया कि विचारधाराओं को विशेष रूप दिया जाए। इसके लिए आवश्यकता थी कि शिक्षाओं, विशेषकर घुमक्कड़ भिक्षुओं के वचनों, को लेखबद्ध किया जाए।

कैसे और क्यों *संघ* की उत्पत्ति हुई तथा इसके समाज के साथ विकसित होते संबंध से इस धर्म के निर्माण का इतिहास उपलब्ध होता है। *संघ* तथा समाज के संबंध को परिभाषित करने में दो विकासक्रम महत्वपूर्ण थे। एक तो यह तथ्य कि महिलाओं को बाद में *संघ* में शामिल होने की अनुमति दी गई। उन स्थानों में संघाराम/*मठ* अस्तित्व में आए जहाँ पहले वे अज्ञात थे। पहले महिलाओं को घर त्यागने तथा संन्यास ग्रहण करने की अनुमति नहीं थी। दूसरा विकासक्रम आम अनुयायियों से भी दान ग्रहण करना था। ऐसे दानों ने उपासना स्थलों की स्थापना में सहायता की। इन दानों को दर्ज किया जाना था और इस प्रकार प्रारम्भिक बौद्ध तथा जैन दान-अभिलेख अस्तित्व में आए। यह पहलू बौद्ध तथा जैन परम्पराओं को पौराणिक परम्परा से भिन्न बनाता है जिसमें वंशों, नायकों तथा राजकुल के वंश-वृक्षों की सूची को समाहित किया गया था। राजपरिवारों तथा उनके प्रमुखों से प्राप्त दानों के बौद्ध लेख न केवल *संघ* की सत्ता में वृद्धि करते थे बल्कि इन्होंने अधिक विश्वसनीय दस्तावेज़ उपलब्ध कराए तथा अधिक ऐतिहासिक स्वरूप का आभास दिया।

बौद्ध *त्रिपिटकों* में विभिन्न प्रकार के तथा बहुत से ग्रंथ शामिल हैं। वे एक ऐतिहासिक परम्परा के उदय का आधार तैयार करते हैं। मूल रूप से बुद्ध की शिक्षाएँ एक मौखिक परम्परा का हिस्सा थीं। धीरे-धीरे इनका पाली भाषा में व्यवस्थित संकलन हुआ तथा इन्हें पाली बौद्ध धर्मग्रंथ कहा जाता है। बुद्ध ने अपने अनुयायियों को उपदेश देने के लिए संस्कृत के स्थान पर अर्द्ध-मागधी को चुना था। बुद्ध

की मृत्यु के बाद यह महसूस किया गया कि *संघ* में अनुशासनहीनता की वृद्धि को रोकने के लिए तथा उनकी शिक्षाओं को संरक्षित किए जाने के लिए *संघ* के संचालन को शासित करने वाले नियमों के साथ ही इन्हें लेखबद्ध किया जाना महत्वपूर्ण था।

थेरवादियों (वरिष्ठ भिक्षु) का यह मानना था कि पाली धर्मग्रंथों में बुद्ध की वास्तविक शिक्षाएँ दर्ज थीं। पाली धर्मग्रंथों को सामान्य युग की पहली सहस्राब्दी के मध्य में संकलित करना प्रारम्भ किया गया था तथा बाद में इन्हें लिखा गया। इनमें तीन *पिटक* (इसका शाब्दिक अर्थ है 'टोकरी') शामिल हैं:

1) *विनय पिटक*: इनमें अनुशासन तथा *संघ* के विनियमों को शासित करने वाले नियम शामिल हैं।

2) *सुत्त पिटक*: इनमें पाँच *निकाय* (संकलन) शामिल हैं जो बुद्ध की सारभूत शिक्षाओं से विकसित हुए थे। इसमें निम्नलिखित शामिल हैं:

   क) *दीघ-निकाय*

   ख) *मज्झिम-निकाय*

   ग) *संयुक्त-निकाय*

   घ) *अंगुत्तर-निकाय*

   च) *खुद्दक-निकाय* (इसमें *धम्मपद* तथा *सुत्तनिपात* शामिल हैं)

बुद्ध के पूर्वजन्मों को *जातकों* में लेखबद्ध किया गया है और *बुद्धवंश* में बुद्ध तथा बुद्धत्व की कथाएँ शामिल हैं।

3) *अभिधम्म पिटक*: ये बुद्ध की शिक्षाओं को व्यवस्थित रूप देते हुए उनकी व्याख्या करते हैं।

मूलभूत धर्मग्रंथों का निर्धारण करना समस्यापूर्ण है। इनमें किए गए बदलावों की तिथि के संबंध में समस्या है तथा उनका कालक्रम समान रूप से इनकी तिथि का निर्धारण करना समस्यापूर्ण बना देता है। इन ग्रंथों में राजनीति, राज्यक्षेत्रों, समाजों के संबंध में जो सूचना मिलती है उसका उपयोग इस काल के इतिहास का पुनर्निर्माण करने में किया गया है।

उपर्युक्त के अलावा भाष्य भी हैं जिनकी प्रकृति स्पष्टीकरण तथा अभिपुष्ट करने की है। ये सभी अतीत की घटनाओं पर दृष्टि डालते हैं। भाष्यों की आवश्यकता तब सामने आई जब *श्रमण* परम्परा के भीतर ही मूलपाठ की अब तक स्वीकृत व्याख्याओं को असहमत पक्षों ने प्रश्नांकित किया, या जब ऐतिहासिक संदर्भ में परिवर्तन हो गया, या नए समय से तालमेल बैठाने वाली व्याख्याओं को खोजा जाने लगा। ग्रंथ तथा उसके भाष्य के बीच संबंध ऐतिहासिक प्रकृति का था, यदि वास्तव में इतिहास न भी रहा हो। ये भाष्य सिंहल/सिहल भाषा में थे जो इस प्रकृति के ग्रंथों की प्रारम्भिक भाषा थी। सामान्य युग की पहली सहस्राब्दी के मध्य में इन ग्रंथों को व्यवस्थित रूप से संकलित कर पाली में अनुवादित किया गया। इन भाष्यों ने इस तथ्य से महत्व प्राप्त किया है कि ये अतीत की उन घटनाओं पर दृष्टि डालते हुए व्याख्याएँ तथा स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हैं जिन्होंने एक ऐतिहासिक परम्परा के निर्माण में योगदान दिया है।

इन पाली धर्मग्रंथों के बाद के *थेरवादी* ग्रंथों में मुख्यतः श्रीलंका के *महाविहार* संघाराम के इतिवृत्त शामिल हैं। इनमें *दीपवंश* तथा *महावंश* शामिल हैं जिनकी तिथि सामान्य युग की प्रथम सहस्राब्दी के मध्य में निर्धारित की गई है और इस प्रकार ये पाली धर्मग्रंथों के बाद के काल के हैं। *चूलवंश, महावंश* के आख्यान का ही विस्तार है और काफ़ी हद तक श्रीलंका के बाद के काल के इतिहास को समाहित करता है। यह संघारामों के इतिहास पर भी ध्यान देता है। इन्हें सिंहली इतिवृत्तों के रूप में भी जाना जाता है।

इन पाली धर्मग्रंथों के बाद की उत्तर भारतीय परम्परा में पहली सहस्राब्दी सी ई की शुरुआत में लिखी बुद्ध की जीवनियाँ शामिल हैं। ये अपने समय में उन आख्यानों के समकालीन हैं जिनसे सिंहली इतिवृत्तों का निर्माण हुआ था। लेकिन, जिन स्थानों में इनकी जड़ें हैं वे एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। इनमें पाली के स्थान पर गांधारी-प्राकृत तथा संस्कृत का प्रयोग किया गया है। ये जीवनियाँ बुद्ध के विषय में हैं जिनमें *संघ* के संरक्षणदाताओं के कुछ शब्दचित्र भी शामिल हैं। अश्वघोष के *बुद्धचरित*

ने अतीत के आयाम के रूप में जीवनी-लेखन की विधा की शुरुआत की थी। इसी रीति को *ललितविस्तार, दिव्यावदान* (इसमें *अशोकावदान* वाला खंड अशोक के महान् कृत्यों का बखान करता है) में अपनाया गया। श्रीलंका की परम्परा में जीवनियाँ सामान्यतः नदारद हैं और उत्तरी बौद्ध परम्परा में इतिवृत्त सापेक्षिक रूप से अनुपस्थित हैं। रोमिला थापर का मत है कि सामान्य युग की प्रारम्भिक शताब्दियों में जीवनीपरक लेखन शिक्षण का सामान्य रूप बन गया। बौद्ध धर्मग्रंथों ने बुद्ध की शिक्षाओं को व्यवस्थागत रूप दिया। ऐसा करते हुए उन्होंने *संघ, थेरवादियों* तथा विख्यात उपासकों के इतिहास, भिक्षुओं और राजाओं के साथ बुद्ध की चर्चा, घटनाओं के थोड़े-बहुत कालक्रम तथा बुद्ध की जीवनी के अंशों से संबंध स्थापित किया है।

3.5 ग्रंथ लेखक

भिक्षुओं को मौखिक परम्परा के संरक्षण का श्रेय दिया जाता है। *थेरवाद* परम्परा ने पाली में अपने दस्तावेज़ों को सुरक्षित रखा क्योंकि इसे बुद्ध द्वारा प्राथमिकता दी गई थी। आरम्भिक सिंहली ग्रंथों ने भी मौखिक सिंहली परंपराओं का सहारा लिया था। संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद सोग्दियन/सोग्डियन, ख़ोतानी, चीनी और तिब्बती भाषा में हुआ जो उन क्षेत्रों का संकेत भी करता है जहाँ बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ था।

इतिहास-पुराण परम्परा के विपरीत इनके लेखक चारणों या ब्राह्मणों के बजाय भिक्षु या आम विद्वान-जन थे। ये भिक्षु *विहारों*/संघारामों में रहते थे। अतः इनका नज़रिया दरबारी या राजतंत्रात्मक नहीं बल्कि *विहारों* तथा *संघ* के परिप्रेक्ष्य में था। नगरीय परिवेश से संबंध, नगर-निवासियों, गृहस्थों तथा व्यापारियों से अंतःसंवाद ने उनके नज़रिए को निर्धारित किया था। राजधानी की राजनीति को छोड़ नहीं दिया गया था किंतु उसे संघारामों की चिंताओं के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता था। राजसत्ता की तुलना में *विहार,* मत-सम्प्रदाय तथा *संघ* अधिक केंद्रीय भूमिका में थे। साक्षरता का अधिक प्रचलन था और इसने धर्मग्रंथों, भाष्यों और इतिवृत्तों की नियमित अंतराल पर प्रतिलिपियाँ तैयार करना अनिवार्य बना दिया था ताकि इनको सुरक्षित रखा जा सके। इन विवरणों को क्षेपकों के माध्यम से या ग्रंथ के पुनर्लेखन या नए ग्रंथ को जोड़कर (पुराने ग्रंथ को स्रोत के रूप में प्रयोग कर) अद्यतन (update) बनाया जाता था।

बौद्ध धर्म में शास्त्रार्थ और चर्चा पर विशेष बल था तथा प्रारम्भिक चरणों में तर्कसंगत-विचार पर भी। दैवीय ज्ञान की इसमें कोई भूमिका नहीं थी। मौखिक परम्परा विद्यमान थी। बुद्ध की शिक्षाओं का निर्माण उनके द्वारा सामान्य उपासकों से आमने-सामने किए गए संवादों से हुआ था। वाणी से निकले हुए शब्दों का आदर होता था किंतु उन पर बहस की जाती थी। इन्हें दर्ज करने की आवश्यकता तब हुई जब बुद्ध की मृत्यु के बाद *संघ* उनकी शिक्षा के यथार्थसत्य को सुरक्षित रखना चाहता था।

बोध प्रश्न-1

1) चर्चा कीजिए कि कैसे विमलसूरि का *पौमचरियम,* जो *रामायण* का एक संस्करण था, एक ऐतिहासिक नज़रिए की अभिव्यक्ति है?

....

....

....

2) मोटे तौर पर बौद्ध ग्रंथों की वे कौन सी श्रेणियाँ हैं जिनका उपयोग बौद्ध ऐतिहासिक परम्परा के पुनर्निर्माण में किया जा सकता है?

....

....

....

3.6 बौद्ध ऐतिहासिक परम्परा

बौद्ध ऐतिहासिक परम्परा के आरम्भिक मूल को *इतिहास-संवाद* तक पीछे ले जाया जा सकता है। ये वार्तालाप-रूपी कथाएँ हैं जो *वेदों* की वार्ता-ॠचाओं और *आख्यानों* के समकक्ष हैं। इनका

सूत्रीकरण बौद्ध स्वरूप में किया गया है और ये *निकाय* तथा *सुत्त पिटक* में पाए जाते हैं। ये सामाजिक संस्थाओं तथा बौद्ध सिद्धांत की शुरुआत की व्याख्याओं के वर्णन वाले खंड का निर्माण करते हैं। ये संवाद बुद्ध के जीवन के किसी प्रसंग या बौद्ध शिक्षा के संदर्भ में किसी शिष्य पर केंद्रित होते हैं। बौद्ध परम्परा में विश्व के कल्पनात्मक आरम्भ तथा कुलों की उत्पत्ति-संबंधी मूल मिथक हमें समाज के विषय में सामाजिक परिकल्पना से अवगत कराते हैं। प्रमुख मिथक कुटुम्ब, भूमि के निजी स्वामित्व, प्रतिष्ठा तथा राजसत्ता के उद्‌गम की व्याख्या करते हैं। अतीत एक कल्पना-लोक है जो समतापूर्ण समाज से सोपानबद्ध समाज की ओर रूपांतरित होता है, जिसका परिणाम राज्य-शासन की उत्पत्ति और क्षत्रियों की प्रभावशाली स्थिति में निकलता है। अतीत का विकास क्रमिक रूप से होता है। भूमि पर निजी स्वामित्व ने क्रमशः सामुदायिक स्वामित्व का स्थान ले लिया था। इससे उत्पन्न हुए विवादों ने किसी ऐसे व्यक्ति में सत्ता को स्थापित किया जो कानूनों को लागू करे तथा सम्पत्ति की रक्षा करे। इसका परिणाम क्षत्रिय (जिसे *खेत* या क्षेत्र का स्वामी होने के कारण ऐसा कहा गया था) तथा *राजा* (सभी को मोह लेने के कारण उसे ऐसा कहा गया) के परस्पर मिल जाने में हुआ। क्षत्रिय या *राजा* के दो हित थे – भूमि का स्वामित्व तथा राजनीतिक सत्ता का प्रयोग। एक वंश-आधारित समाज से एक अधिक जटिल समाज की ओर संक्रमण की समस्त प्रक्रिया को बौद्ध परम्परा में इस ऐतिहासिक प्रतीत होने वाले तरीके से समझा गया है। समस्त प्रक्रिया दैवीय हस्तक्षेप से मुक्त है तथा यह व्याख्या कार्य-कारण तथा तर्क पर आधारित है जो अतीत को ऐतिहासिक रूप से देखने में सहायक होती है।

क्षत्रिय वंशों के उत्पत्ति-संबंधी मिथकों में शाक्यों तथा कोलियों, इत्यादि की वंशावलियाँ शामिल हैं। ऐतिहासिक विचार-पद्धति का यह वंशावली-आधारित तरीका, जिसका *पुराणों* तथा महाकाव्यों में भी प्रयोग किया गया है, बौद्ध परम्परा में भी नज़र आता है, यद्यपि वंश-सूचियों में भिन्नता है। शाक्यों की उत्पत्ति ओक्कला/ओक्कल (संस्कृत में इक्ष्वाकु) वंश से हुई थी जिसकी प्रथम पत्नी की संतान ने कपिलवस्तु के नगर की स्थापना की थी। शाक्य कुल में अन्तर्विवाह पर बल दिया गया था। कुल में अन्तर्विवाह पर बल देना वस्तुतः वंश की शुद्धता को सुनिश्चित करने के लिए था ताकि इसका मूल समान रक्त में स्थापित किया जा सके। उत्पत्ति-संबंधी मिथक के कई रूप हैं। प्रत्येक प्रकरण में मिथक किसी वंश तथा उसके *जनपद* से संबंधित नगर की उत्पत्ति की व्याख्या करता है। इनमें से कई पौराणिक वंश सूची में शामिल नहीं हैं। किसी स्थापित राजपरिवार से जुड़े क्षत्रिय वंश से संबंधित होने पर दिया गया बौद्ध बल स्पष्ट नज़र आता है। बौद्ध ऐतिहासिक परम्परा में उत्पत्ति-संबंधी मिथकों का उपयोग कई बार स्वयं को ब्राह्मणीय व्यवस्था से भिन्न दिखाने के लिए हुआ है और इस प्रकार अतीत का एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

बुद्धवंश में विषय-सामग्री का वर्णन इसी प्रकार हुआ है किंतु यह पहले के बुद्धों की परम्परा में गौतम बुद्ध के अनुक्रम पर केंद्रित है। चूँकि यह ऐतिहासिक बुद्ध के साथ समाप्त होता है अब हम अगले चरण की ओर अर्थात बुद्ध की शिक्षा तथा *संघ* की ओर चलेंगे।

3.6.1 *संघ* का आरम्भिक इतिहास

अतीत की बौद्ध परिकल्पना उत्पत्ति-संबंधी मिथकों से उन घटनाओं की ओर मुड़ती है जिन्हें *संघ* के इतिहास में आधारभूत और ऐतिहासिक माना जाता है। बौद्ध *संघ* के निर्माण का वर्णन करते हुए *विनय पिटक* घटनाओं को एक कालानुक्रमिक रूप में पेश करता है। *विनय पिटक* विभिन्न बौद्ध संगीतियों या परिषदों के इतिहास का वर्णन करता है। *संघ* की प्रथम संगीति, जो बुद्ध की मृत्यु के शीघ्र बाद ही राजगृह में हुई थी, में बौद्ध सिद्धांत का पहली बार पाठ किया गया। आनंद और उपालि वे दो शिष्य थे जिन्होंने दो *पिटकों* का वाचन किया तथा तदनंतर इनको संरक्षित किया गया। दूसरी संगीति एक शताब्दी बाद वैशाली में आयोजित हुई। इस महत्वपूर्ण विषय पर विभाजन पैदा हो गया कि क्या भिक्षु धन का दान ग्रहण कर सकते हैं। वैशाली के भिक्षु *विहारों* को प्राप्त होने वाले ऐसे दानों के पक्ष में थे तो पश्चिमी संघारामों (कौशाम्बी तथा मथुरा) से संबंध रखने वाले भिक्षु इसके विरोध में थे। अंत में जो निर्णय लिया गया वह था ऐसे दान न स्वीकारने का। *थेरवाद* की परम्परा के अनुसार तीसरी संगीति का आयोजन मौर्य साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में 136 वर्षों बाद हुआ था। *थेरवादियों* का यह दावा था कि वे अनुशासन के परम्परागत मत का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अन्य मत-पंथों को अस्वीकार था। सम्राट अशोक के प्रसिद्ध *धम्म*-विच्छेद शिलालेख (Schism-Edict) में असहमति जताने वाले भिक्षुओं को *संघ* से निष्कासित करने का आह्वान है। इससे भी उत्पन्न हुए मतभेद का पता

चलता है। इस संगीति ने इस मतभेद को स्वीकार किया। बहुसंख्यकों को *महासांधिक* कहा गया तथा अल्पसंख्यकों, सम्भवतः वरिष्ठ भिक्षुओं, को *स्थवीरवादिन/थेरवादी* कहा गया। चौथी संगीति पहली शताब्दी सी ई में कुषाण शासक कनिष्क के समय में हुई। यह इन संगीतियों तथा इनके निर्णयों को ऐतिहासिकता प्रदान करने का प्रयास है, *संघ*-विशेष के दृष्टिकोण के अनुसार इन परिषदों द्वारा पाठबद्ध करने के माध्यम से। रोमिला थापर के अनुसार बौद्ध परम्परा के विपरीत पौराणिक पंथ इस समय न केवल किसी प्रकार के संस्थागत ढाँचे से रहित थे बल्कि ऐतिहासिकता के विषयों के प्रति उतने चिंतित नहीं दिखते थे जितने कि बौद्ध।

पंथगत विभाजनों को नियंत्रित करने के प्रयास में एक व्यापक धर्म के रूप में बौद्ध मत *हीनयान* (Lesser Vehicle; जिसके *थेरवादी* एक अंग थे) तथा *महायान* (Greater Vehicle; जिसमें *सर्वस्तिवादिन* तथा अन्य मत शामिल थे) में बँट गया। रोमिला थापर का मानना है कि इस विभाजन का ऐतिहासिक साक्ष्य रखना अनिवार्य था ताकि स्वयं को इन पंथों का उत्तराधिकारी मानने वाले अपनी वैधता साबित कर सकें।

3.6.2 समय की अवधारणा

समय की अभिव्यक्ति तथा उसकी गणना इतिहास का अनिवार्य तत्व है। समय की बौद्ध अवधारणा पौराणिक विचार में उपस्थित समय की अवधारणा से भिन्न है। इसमें चक्रीय तथा रेखीय समय के बीच समान बिन्दु भी हैं और उनमें पृथकता भी है। थेरवादियों/स्थविरों या वरिष्ठ बौद्ध भिक्षुओं के कालक्रम की गणना तथा उनकी वंशावलियों के निर्धारण हेतु प्रस्थान का केंद्रीय तत्व *महापरिनिर्वाण* में उपलब्ध होता है। यह रेखीय समय की पुष्टि करता है। वहीं पौराणिक परम्परा के समान ब्रह्मांडीय समय को चक्रीय रूप में देखा गया है। 'ब्रह्मांडीय समय, वंशानुगत समय तथा रेखीय समय सभी का अस्तित्व है किंतु ये पौराणिक संदर्भ से भिन्न रूप में कार्यरत हैं'। इन सबमें रेखीय समय सबसे कम अस्पष्टता लिए है। *महापरिनिर्वाण* द्वारा एक केंद्रीय तिथि का निर्धारण किया गया है जिससे सभी घटनाओं की गणना की जाती है। यह परिमित काल है तथा इसमें चक्रीय पुनरावृत्ति नहीं होती है। इसने इतिहास के प्रति निवेदन को भी बल दिया और स्वयं उससे बल भी पाया।

3.6.3 ऐतिहासिक विचार के चिह्न

वे ग्रंथ जो बौद्ध इतिहासलेखन का संकेत देते हैं अंशतः धर्म-*संघ* से सम्बंधित हैं तो अंशतः ग़ैर-धार्मिक परिप्रेक्ष्य से भी। उनका संबंध बुद्ध के इतिहास, बौद्ध *संघ*, इसके कई उप-सम्प्रदायों और उनके ऐतिहासिक संस्थानों से है। बुद्ध को एक ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में देखा जाता है। ये सभी पहलू बृहत समाज से भी जुड़े हुए हैं। एक ओर जहाँ राजनीतिक सत्ता के साथ निरंतर अंतःसंवाद हो रहा है वहीं दूसरी ओर सामान्य उपासकों के साथ भी। सामान्य जन-समुदाय द्वारा दिए गए दानों को दर्ज करने वाले दान-अभिलेख इस घनिष्ठ संबंध को अभिव्यक्त करते हैं। *संघ* का इतिहास एक बृहद इतिहास का अंग भी है।

राजनीतिक क्षेत्र में वंशीय उत्तराधिकार देखने को मिलता है। इस ही के समानांतर धार्मिक क्षेत्र में *थेरवादी* भिक्षुओं का पीढ़ीगत अनुक्रम देखने को मिलता है। इतिहास में जीवनवृत्तों को शामिल किया गया है क्योंकि राजाओं तथा *थेरों* का जीवन *संघ* पर प्रभाव डालता था। इतिहास के प्रति बौद्ध मनोवृत्ति राजाओं, मंत्रियों तथा युद्धों, इत्यादि की लोकप्रिय वार्ता के लिए बुद्ध के तिरस्कार से शासित थी और साथ ही काल के अस्थायी होने की बौद्ध अवधारणा से भी। इस तरह के विचार को स्वभावतः तो किसी ऐतिहासिक परम्परा में योगदान नहीं देना चाहिए था। लेकिन, रोमिला थापर का मानना है कि पाली *त्रिपिटकों* में इतिहास का तर्क अंतर्निहित रूप से उपस्थित है। बुद्ध होने के मूल मिथकों तथा कुछ मात्रा में तार्किक पुनर्व्याख्या, बौद्ध गतिविधियों का इतिहास, *संघ* की स्थापना, संगीतियों तथा *संघ* में विभाजन का इतिहास, आदि ये सभी इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि इस विवरण को एक कालक्रम की व्यवस्था में प्रस्तुत किया गया था, तर्कपूर्ण व्याख्याओं को ध्यान रखते हुए जिनमें बीच-बीच में मिथकों को भी स्थान दिया गया था। वह आगे तर्क देती हैं, '... *प्रतीत्यसमुत्पाद* (उत्पत्ति की पर-निर्भरता) का बुद्ध का आधारभूत उपदेश अतीत को जानने के लिए *हेतु* (कारण) को एक आवश्यक तत्व मानता है' (थापर 2017: 412)। घटनाओं को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया गया है तथा यह ध्यान में रखते हुए कि ब्रह्मांड अनित्य तथा परिवर्तनशील है ऐतिहासिक परिवर्तन का विचार

बौद्ध विचारधारा में एक स्वतः सिद्ध तत्व है। ऐतिहासिक परम्परा के घटकों को बुद्ध की शिक्षाओं के क्रमिक विकास में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, बुद्धत्व को दैवीय अनुकम्पा नहीं माना गया है बल्कि विश्लेषणात्मक तर्क तथा कार्य-कारण के ज्ञान के रूप में देखा गया है। *संघ* इस ऐतिहासिक परम्परा में मुख्य पात्र की भूमिका में है जो बुद्ध की मृत्यु के बाद प्रमुख संस्था के रूप में उभरा और जिसके साथ बौद्ध मत का इतिहास शुरू होता है। *संघ* का अशोक या पुष्यमित्र शुंग जैसे शासकों के साथ संबंध *संघ* की ऐतिहासिकता को रेखांकित करता है।

3.6.4 श्रीलंका के पाली इतिवृत्त

दीपवंश तथा *महावंश* प्रमुख इतिवृत्त हैं तथा कुछ बाद का *चूलवंश* है। इनमें से प्रथम दो श्रीलंका के अनुराधापुर में स्थित *थेरवाद* से संबंधित *विहार, महाविहार* के इतिहास तथा इस राज्य के आरम्भिक इतिहास के विषय से संबंध रखते हैं। *दीपवंश* तथा *महावंश* प्रथम सहस्राब्दी सी ई के मध्य के हैं; ये 'श्रीलंका में बौद्ध मत के आगमन से संबंधित भारत के इतिहास पर आधारित हैं जिसमें अशोक ने प्रमुख भूमिका निभाई थी' (थापर 2017: 63)। तीनों इतिवृत्त *थेरवाद* के नज़रिए से मध्य गंगा मैदानों के इतिहास को प्रस्तुत करते हैं। भारत की घटनाओं को एक पृष्ठभूमि के रूप में देखा गया है। ये इतिवृत्त तथा इन पर लिखे गए भाष्य इस तथ्य को प्रकट करते हैं कि स्थापित धर्मों में विभेद के उभार की व्याख्या भाष्य-लेखन के माध्यम से करने की आवश्यकता होती है ताकि नव-दीक्षितों को संतुष्ट किया जा सके।

ये इतिवृत्त एक अधिक स्पष्ट ऐतिहासिक परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें एक व्यवस्थित विवरण है जो कालानुक्रम तथा अपने उद्देश्य अर्थात *संघ* की प्रतिष्ठा स्थापित करने का अनुसरण करता है। ये इतिवृत्त धार्मिक गतिविधियों के विषय में हैं किंतु इनमें *संघ* के प्रभावशाली संरक्षणदाताओं का वर्णन भी है। राजसत्ता के साथ संबंध के साक्ष्य मिलते हैं। राजाओं को प्रभावशाली संरक्षणदाताओं के रूप में दिखाया जाता है। उदाहरण के लिए, अशोक। उसे महान् संरक्षणदाता होने का श्रेय दिया गया है जो धार्मिक उद्देश्यों हेतु इतिहास के उपयोग का संकेत करता है। यद्यपि अशोक की बौद्ध-अनुयायी के रूप में प्रशंसा की गई है तथा उसके निर्णयों को श्रीलंका में *थेरवाद* की स्थापना का श्रेय दिया गया है, वह स्वयं इस तरह के संबंधों के विषय में कुछ अधिक प्रकाश नहीं डालता है। यह सम्भव है कि इस संबंध को बढ़ा-चढ़ा कर बताया गया हो तथा इतिहास का सहारा इस हेतु लेने का प्रयास स्पष्ट ही नज़र आता है। ये इतिवृत्त तथा इन पर लिखे गए भाष्य सार-रूप में श्रीलंका में *थेरवाद* का इतिहास हैं। इतिहास के अन्य उल्लिखित पहलुओं में परिवर्तन की ऐतिहासिक प्रक्रियाएँ, कुलीनतंत्रों का राज्यों में तथा कालांतर में बृहत राजव्यवस्थाओं में रूपांतरण शामिल हैं। यह आख्यान संक्षेप में उत्तर भारत में अपनी जड़ों तक जाता है।

इतिवृत्तों में जो भी समाहित है उससे जो निकलकर आता है वह एक ऐतिहासिक परम्परा द्वारा बौद्ध मत को समर्थन प्रदान करना है। ऐसा कई कारणों से था। बौद्ध मत को कई ग़ैर-बौद्ध सम्प्रदायों और ग़ैर-बौद्ध पड़ोसियों से प्रतिस्पर्धा करनी थी। यह ऐतिहासिक परम्परा औपचारिक रूप ग्रहण कर रही थी तथा प्रवाहमान मौखिक परम्पराओं से परिष्कृत की जा रही थी, उस समय जब तीसरी शताब्दी सी ई के देवानामपिय तिस्स (अशोक) से लेकर चौथी शताब्दी सी ई के महासेन के बीच के राजाओं की सूची को पाठ-बद्ध किया जा रहा था। *संघ* को प्रमुख धार्मिक संस्था के रूप में स्थापित करना एक आवश्यकता थी। संघाराम भूमि-अनुदानों के रूप में संरक्षण प्राप्त कर रहे थे। इसकी राजनीतिक शक्ति की व्याख्या करने के लिए एक ऐतिहासिक परम्परा की आवश्यकता थी। *संघ* को अन्य लालची संस्थानों की श्रेणी में होने के दोष से बचना था और इस उद्देश्य के लिए इसके कृत्यों की धर्मपरायणता तथा नैतिकता पर बल दिया जाना था जिसने *संघ* को संपत्ति से सम्पन्न बनाया था। इसके अतिरिक्त, पंथीय विभाजन और निष्ठाओं ने *संघ* के वरिष्ठ भिक्षुओं व महंतों के विषय में जानकारी को सूचीबद्ध करना आवश्यक बना दिया था। रोमिला थापर का मानना है कि *महाविहार* तथा अभयगिरी संघारामों में उदीयमान *थेरवाद* के बीच प्रतिस्पर्धा के प्रकरण में *महाविहार* की थेरवादी व्याख्या तथा बौद्ध मत का संस्करण श्रीलंका में प्रथम सहस्राब्दी के मध्य से प्रधान बन गया था। उनका विश्वास है कि यह ऐसा उदाहरण था जिसमें एक वर्चस्वशाली धार्मिक संस्था अपने लाभ हेतु ऐतिहासिक आख्यान का स्वयं की सत्ता को सुदृढ़ करने के लिए उपयोग कर रही थी। सम्भवतः यहाँ हम देखते हैं कि 'एक धार्मिक संस्था का इतिहास, राजनीतिक सत्ता की प्रच्छन्न पक्षधरता के रूप में स्वयं इतिहास लेखन की एक परियोजना बन जाता है' (थापर 2017: 436.37)।

3.6.5 बौद्ध जीवनियाँ

अतीत का बौद्ध दृष्टिकोण एक अन्य तरीके से भी वर्णित हुआ जो बुद्ध की जीवनियाँ थीं। इन्हें उनके विचारों को रेखांकित करने वाले व्यक्तिगत आख्यानों के रूप में भी क्रियाशील देखा जा सकता है। उन व्यक्तियों की आंशिक जीवनियाँ भी थीं जो बौद्ध धर्म के लिए महत्व रखते थे, जैसे अशोक। रोमिला थापर के अनुसार जीवनीपरक शैली को अपने विषय को ऐतिहासिक रूप में पेश करने की आवश्यकता थी ताकि यह जीवंत लगे। उत्तर-भारतीय परम्परा में जीवनियाँ लोकप्रिय थीं। इसका कारण यह तथ्य हो सकता है कि उत्तर-पश्चिमी भारत में बौद्ध धर्म का राजसत्ता के साथ बहुत घनिष्ठ संबंध नहीं था और न ही वहाँ अन्य प्रतिस्पर्धी बौद्ध पंथ प्रतिष्ठा हेतु संघर्षरत थे। सामान्य युग की शुरुआत तथा सामान्य युग की शुरुआती शताब्दियों में ऐसी जीवनियों का लेखन आम प्रचलन में आ गया था।

बुद्ध की जीवनियों की रचना को इस तथ्य ने प्रोत्साहित किया कि बुद्ध स्वयं में एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व थे। न केवल *त्रिपिटक* साहित्य ही बुद्ध की जीवनी से सरोकार रखता था बल्कि सामान्य युग की शुरुआत में ग़ैर-*त्रिपिटक* साहित्य भी इन विषयवस्तुओं के आस-पास विकसित हो रहा था। हमारे पास *अवदान* साहित्य है जो बुद्ध तथा *बोधिसत्वों* और अन्य प्रमुख व्यक्तियों के महान् कार्यों तथा उनकी कथाओं को प्रस्तुत करता है तथा उन्हें अतीत के भाग के रूप में दिखाता है। *बुद्धावदान* इस तरह का पहला साहित्य है। यह ऐतिहासिक बुद्ध, *पच्चेकबुद्धों* (जिन्हें *बोधि* तो प्राप्त हुई किंतु उन्होंने बौद्ध सिद्धांत/बौद्ध मत का प्रतिपादन नहीं किया), महत्वपूर्ण *थेरों* तथा *थेरियों* (भिक्षु तथा भिक्षुणियों) के गौरव का बखान करता है। *अवदान* एक सुपरिभाषित परिपाटी को अपनाते हैं। वे किसी पूर्व बुद्ध की किसी अतीत के उपासक द्वारा आराधना से शुरू होते हैं। इसके बाद बुद्ध उस उपासक के पुनः जन्म लेने और उस उपासक द्वारा बुद्ध को पाने का वर्णन करते हैं। *अवदान* साहित्य में जीवनी के तत्व हैं किंतु ये *चरित* साहित्य (जीवन-चरित) से भिन्न हैं।

बुद्धचरित

अश्वघोष के *बुद्धचरित* की तिथि पहली शताब्दी सी ई या इसके कुछ बाद निर्धारित की गई है। इससे ज्ञात होता है कि किस प्रकार जीवनी का उपयोग इतिहास के रूप में किया जाता है। सातवीं-आठवीं शताब्दी के चीनी बौद्ध भिक्षुओं ने इसे बहुत लोकप्रिय अध्ययन-सामग्री में गिना है। इसमें 17 अध्याय हैं जिनमें से केवल प्रथम तेरह को अश्वघोष की रचना माना जाता है। बाद के चार का श्रेय किसी अन्य लेखक को दिया गया है। मूल ग्रंथ में बुद्ध के जीवन को समाहित किया गया था किंतु वर्तमान संस्कृत ग्रंथ बुद्धत्व की प्राप्ति पर समाप्त हो जाता है। एक चीनी अनुवाद में बाद के अध्याय उपलब्ध हैं। इस ग्रंथ की विशेषता उच्च गुणवत्ता की दरबारी संस्कृत काव्य शैली है। *बुद्धचरित* बुद्ध के *बोधि* प्राप्त करने को इस ग्रंथ के उच्चतम बिन्दु के रूप में पेश करता है। बुद्ध का क्षत्रिय वंशज होना, बिंबिसार का उल्लेख, आदि – ये सभी ऐतिहासिक चरित्र के रूप में बुद्ध की केन्द्रीयता की ओर संकेत करते हैं। एक बाद की तिब्बती जीवनी में शाक्यों की वंशावली; कोसल, मगध, अवंति, कौशाम्बी तथा वृज्जि *संघ* का बुद्ध के जीवन के समकालीनों के रूप में उल्लेख; अपने देहावसान के समय बुद्ध का *चक्रवर्तिन* के रूप में सम्मान; गणमान्य भिक्षुओं के गुज़र जाने के साथ *संघ* का पतन; कश्मीर में एक अन्य मत की स्थापना; विभिन्न मतों में विभाजन तथा उनकी उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।

महावस्तु तथा *ललितविस्तार*

महावस्तु का संबंध *महासांघिक* पंथ से है। इसकी तिथि तीसरी शताब्दी सी ई में निर्धारित की गई है। इसको अंशतः मिश्रित संस्कृत में तथा अंशतः प्राकृत में लिखा गया है। यह ग्रंथ बुद्ध के पूर्व जन्मों की कहानियाँ बताता है तथा इसके बाद गौतम बुद्ध का वर्णन आता है। शाक्यों और कोलियों की उत्पत्ति के बाद बुद्ध के जीवन की घटनाओं, उनके जन्म, गृह-त्याग, *बोधि* प्राप्ति, *धर्म-चक्र प्रवर्तन*, उनके अनुयादियों तथा लोगों का उनके धर्म में शामिल होना और अंततः महानिर्वाण प्राप्त होने का वर्णन किया गया है। इस विवरण के बीच में *जातक* जैसी नैतिक कहानियों को भरा गया है।

ललितविस्तार में बुद्ध के जीवन पर विचार किया गया है। बुद्ध को तुषित स्वर्ग से अवतरित बताया गया है। उनकी जीवन-कथा *निदान कथा* के अनुरूप वर्णित की गई है।

धीरे-धीरे इस समय तक ये जीवनियाँ प्रशंसापूर्ण जीवन चरित्रों में बदल रही थीं। बुद्ध का ऐतिहासिक स्वरूप धूमिल पड़ रहा था और वह अब धर्म का साक्षात स्वरूप ग्रहण करते जा रहे थे। यह भी कहा जाने लगा कि बुद्ध अविनाशी हैं तथा उनका *निर्वाण* घटित नहीं हुआ था।

दिव्यावदान

संघ के श्रेष्ठ संरक्षणदाता के रूप में सम्राट अशोक के कृत्यों को *दिव्यावदान* की रचना के कुछ खंडों में शामिल किया गया है जो एक तरह की ऐतिहासिक परम्परा की ओर उन्मुख नज़र आता है। इन खंडों में अशोक मौर्य, उसके पुत्र कुणाल तथा उसके छोटे भाई विताशोक के जीवन से जुड़े प्रसंगों को शामिल किया गया है। इन खंडों को क्रमशः *अशोकावदान*, *कुणालावदान* तथा *विताशोकावदान* कहा गया है। इनकी तिथि लगभग तीसरी शताब्दी सी ई है किंतु पुरानी मौखिक व लिखित रचनाओं पर इन कृतियों ने स्वयं को आधारित किया है।

अशोकावदान मौर्य वंश के इतिहास का वर्णन करती है जिसमें अशोक तथा उसके पुत्र से संबंधित कथाओं के बीच में बुद्ध के काल से उत्तर भारत में अस्तित्व में रहे बौद्ध *संघ* के वरिष्ठ भिक्षुओं का इतिहास भी शामिल कर लिया गया है। अशोक को एक आदर्श तथा *चक्रवर्तिन* राजा के रूप में पेश किया गया है। इस ग्रंथ की रचना उस समय हुई जब बौद्ध धर्म एक स्थानीय संप्रदाय से एक सुस्थापित धर्म में तब्दील हो रहा था। गंगा के मैदानों और मध्य भारत में इसके अनुयायियों की संख्या काफ़ी थी। इसके शीघ्र बाद ही उत्तरी बौद्ध धर्म का विस्तार उत्तर-पश्चिमी भारत तथा मध्य और पूर्वी एशिया में हुआ। रोमिला थापर मानती हैं कि यह आवश्यक था कि बौद्ध धर्म के इतिहास की प्रमुख घटनाओं को सुरक्षित करने के लिए एक ऐतिहासिक परम्परा का सृजन किया जाए, अतः संगीतियाँ तथा *थेरवादी* भिक्षुओं के संबंध में शब्द-चित्रों को लेखबद्ध करने की शुरुआत हुई। इन विवरणों को किसी ख़ास राजनीतिक व्यक्तित्व के साथ, जैसे अशोक के साथ, जोड़कर यह परम्परा अधिक गंभीरता से लिए जाने का अवसर पा सकती थी।

जैसे-जैसे बौद्ध धर्म नए क्षेत्रों में विस्तार कर रहा था और नव-दीक्षितों को आकर्षित कर रहा था जीवनीपरक लेखन महत्वपूर्ण बनता गया। *चरित* शैली का इस्तेमाल न केवल बुद्ध की ऐतिहासिकता स्थापित करने के लिए किया गया, जो वैसे ही पूर्व-स्थापित हो चुकी थी, बल्कि *संघ* से जुड़ी घटनाओं की सत्यता को स्थापित करने के लिए भी किया गया। बुद्ध इस विमर्श के केंद्र में हैं किंतु उनसे पूर्व के बुद्ध के एक अनुक्रम को भी स्थान दिया गया जो इन शिक्षाओं को प्राचीनता और वैधता प्रदान करने का एक प्रयास था। बहरहाल, जिस तरह से सावधानीपूर्वक स्रोतों का उल्लेख किया गया था उसमें प्रामाणिकता के प्रति चिंता भी दिखायी देती है। इसके अतिरिक्त, बौद्ध धर्म के कुछ आयाम, जैसे *प्रतीत्यसमुत्पाद* (पर-निर्भर उत्पत्ति) के विचार ने ऐतिहासिक व्याख्या की समझ को व्यापक बनाने में सहायता की। चूँकि कार्य-कारण प्रकृति का नियम था अतः दैवीय हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं रह गई थी। कर्मों के माध्यम से कारण और कार्य की श्रृंखला अतीत की घटनाओं के ''क्यों'' और ''कैसे'' की व्याख्या भी प्रस्तुत करती थी।

बौद्ध परम्परा में जीवनियाँ महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं क्योंकि यह एक नई शैली थी जो इस तथ्य पर बल देती थी कि बौद्ध धर्म के संस्थापक एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं। इस प्रकार इतिहास का आह्वान किया जाता था। इस जीवनी में उत्पत्ति-संबंधी मिथक, वंशावलियाँ आदि, जो व्यक्ति-विशेष पर अधिक केंद्रित थे, शामिल थे। यह दोनों प्रकार के ग्रंथ – इतिवृत्त तथा जीवनियाँ – महत्वपूर्ण रूप से एक समुदाय की पहचान सृजित करती हैं और यह पहचान इस पर निर्भर करती है कि इतिहास को किस रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

3.7 अन्य धारणाएँ

बौद्ध ऐतिहासिक परम्परा में दो तत्व महत्वपूर्ण हैं। इस तथ्य के अतिरिक्त कि अन्य वैकल्पिक परम्पराओं की तुलना में यह इतिहास के अधिक सुस्पष्ट बोध से परिपूर्ण है, इसकी प्रामाणिकता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि बुद्ध की शिक्षाओं तथा *संघ* के माध्यम से बुद्ध की शिक्षाओं का जो प्रचार हुआ है वह किसी भी विमर्श का केन्द्रीय तत्व है। पाली ग्रंथ *संघ* की व्यवस्था के इतिहास को सुरक्षित रखते हैं। इनमें हम देखते हैं कि यह मौखिक विवरण से लिखित ग्रंथों में रूपांतरित होते हैं जिसका

निर्धारण कई संगीतियों के माध्यम से हुआ था। विभिन्न पंथों को संगीतियों के माध्यम से मान्यता दी जाती है। *संघ* की सत्ता इसे एक राजनीतिक सत्ता – अजातशत्रु, अशोक, कनिष्क – से जोड़कर उच्चतम स्थान ग्रहण कर लेती है। *हीनयान* तथा *महायान* के बीच विभाजन एक महत्वपूर्ण विकासक्रम था। *महायान* बौद्ध धर्म या उत्तरी बौद्ध सम्प्रदाय में बौद्ध धर्म के इतिहास को बुद्ध तथा अन्य प्रमुख संरक्षणदाताओं व महापुरुषों की जीवनी के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। रोमिला थापर का विश्वास है कि उन क्षेत्रों में जहाँ बुद्ध के मत को प्रतिस्पर्धी मतों ने बाधित किया या जहाँ *संघ* शक्तिशाली नहीं था वहाँ बौद्ध धर्म की सत्ता स्थापित करने के लिए जीवनियों का उपयोग किया गया। क्रमिक रूप से ये जीवनियाँ *बोधिसत्व* की अवधारणा के बढ़ते महत्व पर बल देने वाली प्रशस्तिपूर्ण जीवनियों में बदल गईं। पौराणिक धर्मों ने इन विधर्मी मत-सम्प्रदायों का अनुकरण करते हुए *मठों* की स्थापना की और ये *मठ/पीठ* भी इतिहास का समान उपयोग करने की ओर अग्रसर हुए।

बोध प्रश्न-2

1) श्रीलंका के पाली इतिवृत्तों के संदर्भ में अतीत-संबंधी बौद्ध निर्मिति की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

2) चर्चा कीजिए कि कैसे बौद्ध जीवनियाँ अतीत-संबंधी बौद्ध दृष्टिकोण का वर्णन करती हैं?

....

....

....

3.8 सारांश

प्रारंभिक भारत में तीन प्रकार की ऐतिहासिक परम्पराएँ थीं। इनमें प्रधान परम्परा *इतिहास-पुराण* परम्परा थी। इसका श्रेय ब्राह्मण लेखकों को दिया जाता है जो शासकों के विषय में लिख रहे थे। दूसरी तरह की ऐतिहासिक परम्परा चारणों/सूतों की रचनाएँ थीं। ऐसा माना जाता है कि उनकी रचनाओं का ब्राह्मणों द्वारा पुनर्लेखन किया गया जिससे रचनाओं को मूल रूप में चिह्नित करना मुश्किल है। तीसरी परम्परा वह थी जो *श्रमणों* से संबंध रखती थी। इस परम्परा में राजा/शासक बौद्ध तथा जैन *संघों* की शिक्षाओं से जुड़े हुए थे। इस इकाई में हमने इस तीसरी परम्परा की विस्तार से चर्चा की है। *श्रमण* परम्परा एक अधिक नगरीय परिवेश में स्थित थी तथा इसका सरोकार बौद्ध धर्म तथा इसके संरक्षकों के क्रमिक विकास से था। *पुराणों* की रचना से अधिक पहले ही *श्रमण* धर्मों के कई मत-पंथ बन चुके थे। उन्होंने दूर देशों में अभियान भेजे, वे संपत्ति धारण करते थे, राजसी अनुकम्पा का उपभोग करते थे तथा बुद्ध के उपदेशों और *संघ* के इतिहास का संकलन कर रहे थे। विभिन्न बौद्ध संगीतियों का इतिहास दर्ज करने वाले पाली ग्रंथ; *संघ* तथा राजपुरुषों (अजातशत्रु, अशोक, कनिष्क) के बीच राजकीय संबंध; *मठों* का इतिहास; श्रीलंका का *महाविहार*; बुद्ध की जीवनियाँ जो उत्तरी परम्परा के इतिहास को अभिव्यक्त करती हैं – इस इकाई में अन्य पहलुओं के साथ इन सभी की चर्चा की गई है जो साथ में मिलकर इतिहास की *श्रमण* परम्परा का निर्माण करते हैं।

3.9 शब्दावली

श्रमण	*श्रमण* पारिभाषिक शब्द 'श्रम' अर्थात प्रयत्न करने से व्युत्पन्न है जो पुनर्जन्म से मुक्ति – *मोक्ष* – की प्राप्ति हेतु आवश्यक है। जैन तथा बौद्ध *श्रमण* धर्म थे
उपनिषद	ब्रह्म-संबंधी ज्ञान, अर्थात परमसत्य के ज्ञान, पर लिखे गए ग्रंथ
विधर्मी-मत (Heterodox)	धार्मिक जीवन के संदर्भ में रूढ़िवादिता का मतलब स्थापित आदर्श नियमों के अनुरूप उचित या उपयुक्त विश्वास से होता है; विधर्मी मतों से तात्पर्य इन रूढ़ियों से भिन्न मत-सम्प्रदायों से है।

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 3.2

2) देखें भाग 3.4

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 3.6.4

2) देखें उप-भाग 3.6.5

3.11 संदर्भ ग्रंथ

थापर, रोमिला, (2017) *द पास्ट बिफ़ोर असः हिस्टौरिकल ट्रडिशंज़ ऑफ़ अर्ली नॉर्थ इंडिया* (नई दिल्लीः परमानेंट ब्लैक).

3.12 शैक्षणिक वीडियो

डिस्कवरिंग सेक्रेड टैक्स्ट्सः बुद्धिज़्म
https://www.youtube.com/watch\v=jex4R3-qJn8

व्हॉट आर बुद्धिज़्म्स्स' की टैक्स्ट्स?
https://www.youtube.com/watch\v=dYNWDFOBtQg

सैंस्क्रिट्‌इज़ेशन एंड द डिक्शन ऑफ़ अली बुद्धिस्ट टैक्स्ट्स। एस.ओ.ए.एस. यूनिवर्सिटी ऑफ़ लंडन
https://www.youtube.com/watch\v=DINt32Yelgg

व्हॉट इज़ द पाली कैनन ऑफ़ बुद्धिज़्म?
https://www.youtube.com/watch\v=YIcnCqOALPs-t=89s

बुद्धचरित म्युरल्स ऐट द मोनैस्टरी सुधर्मराम इन कोलम्बो (श्रीलंका)
https://www.youtube.com/watch\v=g7ujWzPKxmY

बोरोबुदूर टैम्पल - फ़र्स्ट गैलरी – ललितविस्तार – ऐपिसोड-1
https://www.youtube.com/watch\v=aGdFue2wLJw

रिबर्थ नैरेटिव्स इन बुद्धिस्ट लिटेरेचर, इमेजिज़, एंड लैंडस्केप्स। एस.ओ.ए.एस. यूनिवर्सिटी ऑफ़ लंडन
https://www.youtube.com/watch\v=uK3iCmJYbYo